एक्ज़िम बैंक
स्थापना दिवस
वार्षिक व्याख्यान 2015

''अंतरराष्ट्रीय अभिशासन का विकास, उभरते बाजार और भारत की आर्थिक संभाव्यता''

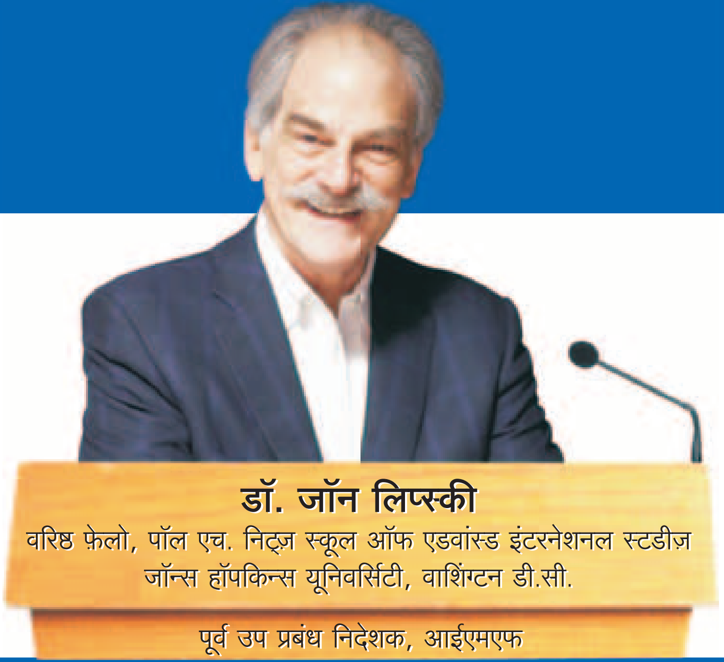

डॉ. जॉन लिप्स्की

वरिष्ठ फ़ेलो, पॉल एच. नित्ज़ स्कूल ऑफ एडवांस्ड इंटरनेशनल स्टडीज़
जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, वाशिंग्टन डी.सी.

पूर्व उप प्रबंध निदेशक, आईएमएफ

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

वाई. बी. चव्हाण केन्द्र, मुम्बई– 400021 में
सोमवार, 23 मार्च, 2015 को
आयोजित यह 30वाँ एक्ज़िम बैंक स्थापना दिवस
वार्षिक व्याख्यान है।

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात–आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

इस व्याख्यान का कोई भी अंश भारतीय निर्यात–आयात बैंक की पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इस व्याख्यान में व्यक्त किए गए विचार और निर्वचक लेखक के हैं और वे भारतीय निर्यात–आयात बैंक पर आरोप्य नहीं हैं।

अंतरराष्ट्रीय अभिशासन का विकास, उभरते बाजार और भारत की आर्थिक संभाव्यता

जॉन लिप्स्की

वरिष्ठ फ़ेलो,

फॉरेन पॉलिसी इंस्टीट्यूट दि पॉल एच. निट्ज़ स्कूल ऑफ एडवांस्ड इंटरनेशनल स्टडीज़

जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, वाशिंग्टन डी.सी.

भारत के व्यापार संबंधों को विश्व के चारों ओर फैलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे एक्ज़िम बैंक द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में वक्ता के रूप में उपस्थित होकर मैं आज गर्व का अनुभव कर रहा हूं। इसके लिए मैं एक्ज़िम के प्रबंधन को धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने मुझे यह अवसर दिया।

एक्ज़िम बैंक के स्थापना दिवस 2015 के वक्ता के रूप में आमंत्रण मिलने के साथ ही मैंने इस संस्थान के इतिहास को जानने का प्रयास किया। मेरे लिए यह जानना आश्चर्य की बात थी कि एक्ज़िम बैंक ने मात्र 33 वर्ष पूर्व ही अपने परिचालन प्रारम्भ किए थे। शायद उससे पहले भारत की आर्थिक प्रगति और समृद्धि के लिए भारत के अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक संबंधों को बढ़ावा देने को इतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। यह जानकर खुशी और आश्चर्य होता है कि एक्ज़िम बैंक की स्थापना के बाद के इस थोड़े से ही अंतराल में भारत में कितना बदलाव आया है। उदाहरण के लिए भारत की जनसंख्या में इसी अवधि के दौरान जहां 500 मिलियन की बढ़ोतरी हुई है या यूं कहें कि आज की यू एस की आबादी की 150% की वृद्धि हुई है वहीं भारत के विदेशी व्यापार में हर दशक में चार गुनी और जीडीपी में लगभग दुगुनी दर से वृद्धि हुई है।

मुझे अच्छी तरह याद है जब मैं आज से लगभग 25 साल पूर्व पहली बार भारत आया था और उस समय मैंने भारत में विकास की वह संभावनाएं देखी थीं जो उस समय तक सुषुप्ता अवस्था में थीं। उसके पश्चात कई दौरों के बाद मुझे इसे और अच्छी तरह समझने में मदद मिली। नि:संदेह भारत की संभाव्यता के बारे में मेरे विचार स्टैंफोर्ड यूनिवर्सिटी के साथ मेरे संबंधों तथा उसके चारों ओर बनी सिलिकॉन वैली जहां कई भारतीय टेक्निकल और बिजनेस विशेषज्ञों द्वारा इस क्षेत्र की उद्यमिता और नवोन्मेषिता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया गया था, से प्रभावित थे।

वस्तुत: कुछ साल पहले जब मैं दिल्ली आया था तो मुझे दिल्ली से राजस्थान जाने वाले हाइवे पर कई नए ऑफिस टॉवरों की एक श्रृंखला–सी देखने को मिली। मुझे वे पालो एल्टो के नजदीक बेशोर फ्रीवे के पास वाले आई टी कंपनियों के दफ्तरों जैसे लगे और बाद में मुझे पता चला कि वे टॉवर वाकई आई टी कंपनियों के दफ्तरों के ही थे जिन्हें सिलिकॉन वैली की तर्ज पर उतनी ही ऊर्जा, आशावादिता और उत्साह के साथ बनाया जा रहा था।

यह सही है कि एक्ज़िम बैंक की स्थापना के बाद से भारत में बहुत सारे बदलाव आए हैं। खासकर, विश्व स्तर पर उभरती अर्थव्यवस्थाओं का महत्व भी बहुत तेजी से बढ़ा है जो शायद 33 साल पहले नहीं था। इस समय में भारत आने का अवसर मिलना वाकई बहुत महत्वपूर्ण है और मेरी इस बात से आप सब भी सहमत होंगे कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं के समूह में इस समय भारत को पूरी दुनिया के निवेशकों और व्यापारियों द्वारा बड़ी उम्मीद और अवसर के रूप में देखा जा रहा है।

एक बड़े क्षेत्र में यह तुलनात्मक सुधार पूरी दुनिया में सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है और पूरी दुनिया यह समझ चुकी है कि विकास पथ पर भारत की यात्रा की शुरूआत हो चुकी है और मैं कहना चाहूंगा कि भारत ने विकास पथ पर अपने कदम बढ़ा दिए हैं और यह वृद्धि और विकास की ऐसी मंजिल की ओर बढ़ रहा है जिसमें देश के सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय हर क्षेत्र का विकास शामिल है। हालांकि यह वर्तमान उत्साह जो पहले बड़ी उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए थोड़ा कम सकारात्मक था, सामान्यतः सभी उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए है।

मेरे आज के वक्तव्य में मैं एक महत्वपूर्ण संदेश देना चाहूंगा: पूरे विश्व की नजर में भारत तेज विकास के पथ पर बढ़ने को तैयार है जिसके काफी व्यापक और लाभकारी परिणाम होंगें। किन्तु इन उत्साहजनक परिणामों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। यह तभी हासिल होंगें जब हर अवसर का पूरा लाभ उठाया जाएगा और नए निवेश के साथ–साथ सुधार भी लागू किए जाएंगे।

दरअसल मुझे यह पता है कि आप इस बात को पहले से ही जानते हैं और इससे सहमत भी हैं; मैं भी यहां इसलिए नहीं आया हूँ कि मैं आपको सफलता के कुछ सूत्र दे पाऊंगा। वास्तव में आप अपने देश को मुझसे बेहतर जानते हैं। किन्तु मैं वर्तमान परिस्थितियों और संदर्भों में आपके सामने अपना एक दृष्टिकोण रखूंगा जो शायद आपको पसंद आए और शायद आपके लिए उपयोगी हो।

मैं इस संदर्भ में चार परिदृश्यों पर बात करूंगा: पहला, मैं आपको थोड़ा पीछे (इतिहास में) ले चलूंगा जिससे आपको उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की बदलती भूमिका को समझने में मदद मिलेगी। इसके बाद मैं आपके सामने कम से कम अपने स्तर से वैश्विक अर्थव्यवस्था के समक्ष संभावनाओं और जोखिमों पर संक्षिप्त प्रकाश डालूंगा जिसमें, 2007 / 2009 में आए वित्तीय संकट के बाद वैश्विक अर्थव्यवस्था को सुधारने संबंधी प्रयासों की एक जटिल रिपोर्ट भी शामिल है। तीसरा, मैं अंतरराष्ट्रीय निवेशकों और व्यापारियों के दृष्टिकोण में उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए आए परिवर्तनों पर भी प्रकाश डालूंगा और अंतत: मैं इन घटनाओं/परिस्थितियों की भारत के लिए प्रासंगिकता और उनके निहितार्थ पर बात करूंगा।

विश्व युद्ध के बाद बनी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था

सबसे पहले मैं आपको इसके इतिहास में ले जाना चाहूंगा– जिससे हमें इस मुद्दे को समझने में मदद मिलेगी। यह इतिहास बहुत पुराना नहीं है बल्कि मेरी आज की चर्चा के लिहाज से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के 70 वर्षों का इतिहास है जिसे मुख्यत: हम दो हिस्सों में बाटेंगें– पहली अवधि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1940 में महत्वपूर्ण वैश्विक संस्थाओं के निर्माण की अवधि से लेकर 1990 में सोवियत संघ के विघटन और चीन तथा भारत के वैश्विक व्यापार प्रणाली में बड़े ढंग से प्रवेश तक की है। जबकि दूसरी अवधि 1990 से लेकर 2007 में आए हालिया आर्थिक संकट तक की अवधि है। इस विषय पर हम जैसे–जैसे अपनी चर्चा को आगे बढ़ाएंगे तो यह समझने में मदद मिलेगी कि क्या वैश्विक वित्तीय संकट के बाद की अवधि इतिहास का एक नया दौर अर्थात तीसरा दौर तो नहीं है।

वस्तुत: ग्रेट डिप्रेशन तथा द्वितीय विश्व युद्ध से मिली सीख ने बाद की घटनाओं को कई ढंग से प्रभावित किया। विजेता राष्ट्रों के नेताओं ने विश्व युद्ध खत्म होने के पहले ही यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि ग्रेट डिप्रेशन ही द्वितीय विश्वयुद्ध का महत्वपूर्ण कारण था और इसे व्यापक बनाने में विश्व व्यापार प्रणाली और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली के एक साथ पतन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विशेष रूप से 1920 के अंत में तथा 1930 के प्रारंभ में निर्यात बढ़ाने व आयात को रोकने तथा विभिन्न उपायों द्वारा घरेलू उत्पादन को संरक्षण प्रदान करने के लिए हर प्रकार के ट्रेड बैरियर लगाने के असफल प्रयास किए गए। राजनैतिक परिदृश्य में भी लीग ऑफ़ नेशंस की निष्क्रियता–जिसमें स्वयं यू एस सदस्य नहीं था जबकि इसके गठन का प्रस्ताव स्वयं अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन द्वारा दिया गया था – का अर्थ यह था कि राजनैतिक रूप से ऐसा कोई भी फोरम नहीं था जो आपसी वैमनस्य को सुलझा सके और इसकी परिणिति संकट के रूप में हुई।

हालांकि इस अंधे युग की समाप्ति के पहले ही विजेता राष्ट्रों के नेता ऐसे समाधान निकालने पर सहमत हो चुके थे जिससे इस प्रकार के दुखद संकट दोबारा न आने पाएं। संकट के कारण के विश्लेषण ने कुछ समाधान भी दिए और इन पर परस्पर सहमति भी बनी। इन प्रयासों के मूल में डिप्रेशन तथा युद्ध से हुई हानि को रोकने के लिए नई संस्थाओं की स्थापना करना तथा एक नई मजबूत व्यवस्था के प्रावधान के जरिए इसे पुनः न होने देना था। कई मामलों में यह नई संस्थाएं अभूतपूर्व रहीं और सभी संस्थाएं अंतरराष्ट्रीय कानूनों के अंतर्गत संधियों के परिणामस्वरूप उपजीं जो उनके स्थायित्व का भी कारण बना।

मित्र राष्ट्रों की इस नई व्यवस्था की डिजाइन का आधार था– नए नियमों वाली नई व्यवस्था और इसकी निगरानी के लिए तीन नई संस्थाएं प्रस्तावित की गईं। नई व्यवस्था में व्यक्तियों तथा राष्ट्रों के मूल अधिकारों की रक्षा सहित वैश्विक विवादों और सुरक्षा विवादों के निपटारे के लिए पहली संस्था के रूप में संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था की स्थापना की गई तथा इसे निर्णयों को लागू करने के अधिकार दिए गए। इस नई व्यवस्था की दूसरी संस्था थी प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य करार अर्थात गैट जिसे अब विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) के नाम से जाना जाता है। गैट का उत्तरदायित्व था बहुपक्षीय वार्ताओं के जरिए प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से लगातार बढ़ते गए व्यापार और प्रशुल्क अवरोधों में कमी लाकर वैश्विक व्यापार के रुके प्रवाह को चालू करना। तीसरी संस्था थी अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आई एम एफ) जिसकी स्थापना का उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय व्यापार को सुचारू रूप से चलाने हेतु अपेक्षित वित्तीय प्रवाह की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए एक नई व्यवस्था देना था। (हालांकि आई एम एफ के साथ ब्रेटनवुड्स से उपजी उसकी जोड़ीदार संस्था आईबीआरडी, जिसे अब विश्व बैंक कहा जाता है, भी जुड़ी रही।)

यहां मैं आई एम एफ की भूमिका के बारे में कुछ बातें कहना चाहूंगा। इस नई संस्था में दो ऐसे प्रावधान थे जिनका कोई भी ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता है। यहां मैं काफी चर्चित डॉलर आधारित विनिमय दर को अपनाने, जिसके चलते यू एस डॉलर स्वर्ण का विकल्प बन गया, की बात नहीं कर रहा हूं। बल्कि मैं आई एम एफ के संगठन करार (जो इसका वैधानिक दस्तावेज है) के दो अन्य अतिवादी प्रावधानों की बात कर रहा हूं।

इनमें से एक प्रावधान यह था कि सदस्य देशों के नागरिकों को अनुमत मुद्रा भुगतान करने के लिए (अर्थात माल तथा सेवाओं के आयात के भुगतान तथा विदेशी ऋण पर ब्याज) बिना किसी हस्तक्षेप (अर्थात बिना किसी सीमा या भुगतान शेष उद्देश्यों के लिए लगाई गई शर्तों के) के विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का अधिकार होगा। जिस समय फंड की स्थापना हुई थी, उस समय इस प्रकार के विदेशी मुद्रा नियंत्रण वास्तव में आम थे। आज, कई वर्षों की चरणबद्ध कटौतियों के बाद इस प्रकार के प्रतिबंध सदस्यों की व्यापक संख्या की दृष्टि से अनावश्यक हो गए हैं। हालांकि उभरती अर्थव्यवस्थाओं ने इन्हें ढहाने में थोड़ी धीमी गति से कार्य किया है। मैं यहां यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि आई एम एफ के संविधान में की गई यह व्यवस्था किसी भी तरह से (किसी अच्छे कारण जैसे राजस्व जुटाने, सुरक्षा, संरक्षा या पर्यावरणीय चिंताओं के चलते) आयात नियंत्रणों या प्रशुल्क नियंत्रणों के उपयोग को रोकने में असमर्थ रही। यह एक एकाधिकारवादी कदम था जबकि गैट (अब WTO) के अंतर्गत व्यापार नियंत्रण वित्तीय प्रणाली के जरिए केन्द्रीय बैंकों द्वारा परस्पर सहमत नियमों के अंतर्गत लागू किए जाने थे।

मुद्राकोष का एक दूसरा अनूठा पहलू है इसकी अभिशासन संरचना। नियमों के अनुसार मतदान अधिकार का हिस्सा ''आर्थिक हैसियत'' से तय किया जाएगा और इसका पुनर्मूल्यांकन कम से कम पाँच वर्षों के अंतराल पर अनिवार्य रूप से किया जाएगा। अत: यदि हम अपने विश्लेषण के लिए यह मान लें कि सभी सदस्य देशों में प्रतिव्यक्ति आय समान हो जाती है (जो फंड का दीर्घावधि लक्ष्य भी है) तो फंड स्वयं अपनी संरचना के आधार पर ही पूरी तरह प्रजातांत्रिक बन जाएगा और तब मताधिकार का हिस्सा जनसंख्या के अनुपात में हो जाएगा। मेरा विश्वास है कि वैश्विक संस्थानों में प्रजातांत्रिक संस्थान बन सकने की आई एम एफ की यह व्यवस्था अपने आप में अनूठी है।

अब कुछ क्षण के लिए मैं आपको इस मुद्दे से अलग एक और पहलू की ओर ले जाना चाहूंगा। आप शायद इस बात से अवगत होंगे कि आई एम एफ के मताधिकार हिस्से के पुनर्मूल्यांकन का हालिया निर्णय नवम्बर 2010 में जी–20 की सिओल बैठक के दौरान लिया गया था। इस बैठक में जी–20 देशों द्वारा यह निर्णय लिया गया कि आई एम एफ के सर्वोच्च 10 वोटिंग अधिकार जी–7 देशों कनाडा को छोड़कर और चीन, भारत, रूस तथा ब्राजील को मिलाकर के पास रहेंगें और 65% वैश्विक जीडीपी का प्रतिनिधित्व करने वाले 10 सदस्य देशों के पास 52.1 प्रतिशत मताधिकार रहेंगें। यह अत्यंत कुंठा की बात है कि इस तरह का सुधार केवल अमेरिका की काँग्रेस का अनुमोदन न मिलने के कारण लागू नहीं हो सका। जबकि मेरी दृष्टि से ये सभी दस देश आज वैश्विक अर्थव्यवस्था की हकीकत हैं। खैर मैं इस मुद्दे पर आपसे उस समय फिर बात करूंगा जब मैं वैश्विक वित्तीय संकट के परिप्रेक्ष्य में वैश्विक गवर्नेंस सुधारों पर चर्चा करूंगा।

विश्व युद्ध के बाद का पहला चरण

खैर मैं फिर से अपनी उसी मुद्दे पर आता हूँ जब मैं आपसे नई बनी संस्थाओं का जिक्र कर रहा था। सबसे पहले 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने (51 सदस्यों के साथ) कमोबेश एक सार्वभौमिक संस्था के रूप में अपने परिचालन प्रारंभ किए जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के सभी विजेता दल के राष्ट्र शामिल थे। इसके विपरीत गैट ने अपने परिचालन 23 सदस्यों (कांट्रैक्टिंग दल जिनमें भारत भी शामिल था) के साथ 1947 में प्रारंभ किए तथा आई एम एफ की स्थापना 1945 में 29 सदस्यों के साथ हुई (जिसमें भारत भी शामिल था)।

जैसा कि आप सब जानते हैं कि आई एम एफ की स्थापना एक सार्वभौमिक संस्था के रूप में की जानी थी किंतु रूस द्वारा बाद में आई एम एफ अथवा गैट में शामिल न होने के चलते इसका यह स्वरूप विकसित नहीं हो पाया। जबकि रूस ने न केवल ब्रेटनवुड्स सम्मेलन वार्ताओं में भाग लिया था बल्कि आई एम एफ के आधार दस्तावेज करार की ड्राफ्टिंग भी की थी। रूस ने अंतत: एक अन्य प्रतिस्पर्धी संस्था कॉमकॉन की स्थापना का निर्णय लिया जो अंतत: असफल रहा।

विगत में झांकने के इस प्रयास से हमें दो बातें पता चलती हैं पहली यह कि संस्थापकों के नेक इरादों के बावजूद द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की प्रमुख संस्थाओं की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य अभी भी पूरा नहीं हो सका है क्योंकि इन संस्थाओं की स्थापना एक ऐसी वैश्विक संस्था के रूप में की जानी थी जो एक टिकाऊ भुगतान संतुलन व्यवस्था के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने में सहायक हो। दूसरी यह कि विश्व युद्ध के उपरांत वैश्विक व्यापार व्यवस्था को मजबूत करने तथा एक सशक्त वैश्विक वित्तीय व्यवस्था के निर्माण संबंधी प्रयास मुख्यत: उन्नत अर्थव्यवस्थाओं पर केन्द्रित रहे। अत: व्यापार तथा वृद्धि को बढ़ाने संबंधी संस्थाओं की प्रारंभिक सफलताओं का सर्वाधिक लाभ औद्योगिकीकृत अर्थव्यवस्थाओं को ही मिला। वस्तुत: उभरती अर्थव्यवस्थाओं का इस चरण में वैश्विक जीडीपी में हिस्सा बाजार विनिमय दरों पर मात्र 15% तथा पीपीपी दरों पर 33% ही था। जबकि आज यह क्रमश: 25% तथा 50% से अधिक हो गया है।

विश्व युद्ध के बाद का दूसरा चरण

दूसरा चरण सोवियत संघ के विघटन के बाद 1990/91 से प्रारंभ हुआ और आई एम एफ आज 188 सदस्यों के साथ इसके संस्थापकों के सपनों के अनुरूप एक सार्वभौमिक स्वरूप की संस्था बनकर उभरा है। इस चरण में सोवियत संघ की केन्द्रीय आयोजना व्यवस्था का समाप्त होना तथा यूरोपीय संघ की सदस्यता का 12 से 28 देशों तक बढ़ जाना भी अन्य महत्वपूर्ण घटनाएं रहीं। इसी के साथ चीन (तेजी से) और भारत का वैश्विक व्यापार व्यवस्था में प्रवेश भी इस दौर की महत्वपूर्ण घटनाएं बनीं। उभरती अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती भूमिका को, 1994 में गैट के उरूग्वे दौर की वार्ताओं के सफल समापन के बाद और बल मिला क्योंकि इस वार्ता के बाद टैरिफ तथा कृषि सब्सिडी में बड़ी मात्रा में कमी के साथ–साथ उभरते तथा विकासशील देशों को कपड़े तथा टेक्सटाइल क्षेत्र ने व्यापार करने की भी पूरी छूट मिली। गैट भी इस दौर में विश्व व्यापार संगठन (WTO) में बदल गया तथा इसकी सदस्यता 1989 के 95 से बढ़कर 160 तक पहुँच गई। चीन ने 2001 में इसकी सदस्यता ली जबकि रूस 2012 में इसका सदस्य बना।

प्रक्रियागत रूप में इन घटनाओं ने एक ऐसी प्रभावी वैश्विक प्रणाली की स्थापना में मदद की जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद नहीं बन पायी थी। उसी समय आई एम एफ के अंतर्गत मुद्रा नियंत्रणों की धीरे–धीरे समाप्ति ने एक ऐसी मजबूत वैश्विक व्यापार एवं पूंजी प्रणाली के निर्माण में मदद की जो पहले कभी मौजूद नहीं थी। इसीलिए मैं 1990 से पहले की अवधि को वैश्वीकरण से पहले की अवधि अथवा आंशिक वैश्वीकरण अवधि तथा उसके बाद की अवधि को ''पूर्ण वैश्वीकरण'' अवधि कहना अधिक समीचीन समझता हूँ।

मैंने आपको इतिहास की यह झलक इसलिए दिखलाई है कि मैं आपके सामने कुछ बातें स्पष्ट कर सकूं। मेरी परिभाषा के अनुसार ''पूर्ण वैश्वीकरण'' तुलनात्मक रूप से एक नई संकल्पना है। जिसका संबंध वैश्विक व्यापार में कई उभरती बाजार अर्थव्यवथाओं में बढ़ते जीडीपी तथा जीवन स्तर के साथ–साथ वैश्विक व्यापार तथा सीमापार वित्तीय संव्यवहारों में अभूतपूर्व वृद्धि की अवधि से भी है।

उभरती अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की यह रफ्तार सभी देशों में समान नहीं थी और कुछ ही उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं लंबे समय तक इस वृद्धि दर को बनाए रख सकीं। नोबल पुरस्कार विजेता माइकल स्पेंस की अध्यक्षता में विश्व बैंक द्वारा गठित 'वृद्धि एवं विकास' पर आयोग के निष्कर्षों के अनुसार सभी उभरती तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में तेज और टिकाऊ वृद्धि को सुनिश्चित करने वाले प्रमुख तत्व लगभग समान रहे। इनमें विश्व अर्थव्यवस्थाओं के साथ रणनैतिक एकीकरण, संसाधनों, विशेषकर श्रम का आवागमन, उच्च बचत व निवेश दर तथा वृद्धि के लिए प्रतिबद्ध सक्षम सरकार प्रमुख तत्व थे। अत: यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सच्चे वैश्वीकरण का युग और व्यापार में खुलापन कई उभरती अर्थव्यवस्थाओं में प्रगति और उनमें वृद्धिशील निवेश का कारण बना।

शायद यह भी सच है कि वैश्वीकरण की प्रारंभिक अवधि में अपनी अर्थव्यवस्था को खोलने और आधुनिक बनाने के दौरान कई अर्थव्यवस्थाओं में अस्थिरता तथा तनाव पैदा हुआ और नए संकटों का जन्म हुआ। विशेषकर नब्बे के मध्य के दशक में ''टकीला संकट'' ने लैटिन अमेरिका की कई अर्थव्यवस्थाओं को अपनी चपेट में लिया था जो अभी हाल ही में इससे उबर पाई हैं। इसके बाद 1997-98 में एशियाई मुद्रा संकट आया जो कहीं अधिक गहरा था तथा उसने उस क्षेत्र को अपनी चपेट में लिया था जो कुछ समय से तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं का क्षेत्र था। इससे प्रभावित जनसंख्या तथा अर्थव्यवस्था लैटिन अमेरिका की तुलना में कहीं अधिक बड़ी थी।

1990 के दौर के समय की इन चुनौतियों का सामना कर रही कई उभरती अर्थव्यवस्थाएं घरेलू वित्तीय प्रणाली की कमजोरियों के साथ अपर्याप्त मैक्रो आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन के चलते इस संकट में फंसी। विशेषकर उन मामलों में जहाँ स्फीतिकारी तथा अन्य नीतियों को बढ़ते चालू खाते के घाटे के बावजूद स्थिर विनिमय दरों के आधार पर नियत किया गया था। इसके साथ ही श्रम बाजार से संबंधित कड़ी घरेलू नीतियों ने परेशानियों को और बढ़ा दिया। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि उभरती अर्थव्यवस्थाएं अपनी परेशानियों के लिए स्वयं जिम्मेदार थीं और उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की इसमें कोई भूमिका नहीं थीं। उदाहरण के लिए नब्बे के आखिरी दशक में येन/डॉलर विनिमय दरों में अस्थिरता ने कई एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को परेशान किया वहीं अमेरिका

में उपजी ''डॉट.कॉम'' बूम और इसके पतन ने कई वैश्विक वित्तीय बाजारों में अस्थिरता पैदा की, हालांकि इस 'डॉट कॉम बबल' का कितना प्रभाव पड़ा इसका अभी तक ऑकलन नहीं किया जा सका है।

इस चरण का अगला पड़ाव था दक्षिण एशियाई देशों की अर्थव्यवस्थाओं में सुधार की अनपेक्षित तेज गति; जिसने 1999 तक इस क्षेत्र को फिर से विश्व की सर्वाधिक तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं का क्षेत्र बना दिया और इसने पारम्परिक बौद्धिक शंकाओं, जिसने एशिया के 'लॉस्ट डिकेड' संकट के जोखिमों से आगाह किया था, को झुठला दिया। इसके बाद 2003 के प्रारंभ में अमेरिका में शुरू हुई वृद्धि की सकारात्मक दर ने भी पारंपरिक अनुमानों और आशंकाओं को ठुकरा दिया। इसका श्रेय यू एस की मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों सहित वहां के निजी क्षेत्र को भी जाता है जिसने बदलते वित्तीय और आर्थिक प्रोत्साहनों के जवाब में स्वयं को तेजी से बदला।

संकट पूर्व अवधि

2003 से 2006 की अवधि गत तीन दशकों में जीडीपी की सर्वाधिक तेज वृद्धि दर हासिल करने वाली अवधि रही और इस दौरान वैश्विक जीडीपी ने रियल टर्म में 5% प्रतिवर्ष से अधिक की वृद्धि दर दर्ज की। हालांकि यह अवधि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के चरण में राष्ट्रों द्वारा समान स्तर की जीडीपी वृद्धि दर हासिल करने वाली अवधि के रूप में भी जानी जाती है। किन्तु इस समान वृद्धि दर ने कई बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में घरेलू मांग में वृद्धि दरों की विभिन्नता को छुपा दिया। परिणामत: समान जीडीपी वृद्धि दरों के बावजूद कई देशों में चालू खाते के घाटों में बड़ा असंतुलन पैदा हुआ।

इन असंतुलनों को कुछ विद्वानों द्वारा वैश्विक वृद्धि तथा आर्थिक और वित्तीय स्थिरता के लिए एक प्रमुख खतरा माना गया और इसे पण्यों तथा ऊर्जा की ऊंची कीमतों के लिए भी जिम्मेदार माना गया। वैश्विक मांगों को सुप्रबंधित तथा समन्वित करने के प्रयासों (विशेषकर वैश्विक असंतुलनों पर आई एम एफ के बहुपक्षीय परामर्शों) को भी अपेक्षित गति नहीं मिली और इसने भी 2007-2009 के वित्तीय संकट के आने में मदद की।

संकटपूर्व 2003-2006 की अवधि को हालांकि सामान्यत: सरकारी अधिकारियों, विश्लेषकों तथा निवेशकों द्वारा एक ऐसे संकेत के रूप में देखा जा रहा था कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया बड़ी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अपरिहार्य रूप से तेज होने वाली है। 2003 में ''ड्रीमिंग विद ब्रिक्स'' जिसकी जिसकी शुरूआत हुई थी वह अब उभरती अर्थव्यवस्थाओं की व्यापक श्रेणी के लिए आशावाद की सामान्य भावना बन चुकी थी। रूचिर शर्मा ने 2012 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''ब्रेकआउट नेशंस'' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। विशेषकर यूके में घरेलू मांग में सशक्त वृद्धि और अनुकूल अंतरराष्ट्रीय व्यापार शर्तों से कई पण्य निर्यातक/तेल निर्यातक उभरती अर्थव्यवस्थाओं को फायदा पहुंचा। इसने प्रमुख उभरती अर्थव्यवस्थाओं में टिकाऊ और विकास की तेज रफ्तार के संबंध में कुछ ज्यादा ही सरल और व्यापक आशावादिता को जन्म दिया।

वैश्विक संकट का आगमन

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव अनुमान से कहीं अधिक व्यापक और गहरे थे। मेरा इरादा आपको उस संकट के प्रभावों के विस्तार में ले जाना नहीं है और न ही इसकी आवश्यकता है, किंतु यहाँ यह स्मरण कराना जरूरी है कि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय प्रणाली के लिए जोखिम पूर्वानुमानों से कहीं अधिक गहरे थे। पूर्व दशक में वैश्विक व्यापार के अधिक एकीकृत होने से इसके दुष्प्रभाव कई प्रमुख उभरती अर्थव्यवस्थाओं को उनकी कल्पना के विपरीत बहुत तेजी से अंतरित हो गए।

संकट, प्रतिक्रिया और वर्तमान संभावनाएं

अब मैं अपनी दूसरी थीम पर आऊंगा जो वित्तीय संकट के उपरांत प्रतिक्रिया, निकट भविष्य की संभावनाओं और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों के बारे में है। संकट के प्रारंभ होने के समय की स्थितियां मेरे जेहन में आज भी ताजा हैं क्योंकि उस समय आई एम एफ में अपनी तैनाती के चलते मैं इसके प्रभावों और उपायों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ था। मुझे आज भी याद है कि 2007 में प्रारंभ हुए वित्तीय संकट के प्रभावों और उसकी व्यापकता का अंदाजा सितम्बर 2008 की उस नाटकीय घटना के बाद ही लगाया जा सका था। हालांकि उसके बाद अधिकारियों

और अन्य संबंधितों की प्रतिक्रिया काफी तत्पर रही। लेहमैन के दिवालिया होने की घटना के चलते यह बात सबको स्पष्ट हो चुकी थी कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक प्रभाव में तेजी से वृद्धि हुई और इस वित्तीय संकट के प्रभावों से निपटने के लिए इनके पूर्ण सहयोग की आवश्यकता होगी।

संकट की प्रतिक्रिया स्वरूप जो सबसे बड़ा कदम उठाया गया वह था 'जी–20 लीडर्स समिट प्रोसेस' का गठन जिसमें 8 उभरती अर्थव्यवस्थाओं– जो वैश्विक जीडीपी के 80% वैश्विक व्यापार प्रवाहों का 75% और विश्व की कुल जनसंख्या के दो तिहाई से अधिक हिस्से का प्रतिनिधित्व कर रही थीं – सहित सभी राष्ट्र प्रमुखों की ऐतिहासिक उपस्थिति दर्ज हुई। उनका उद्देश्य निर्विवाद रूप से एक स्थायी अभिशासन व्यवस्था की स्थापना करना था और उनकी पहली बैठक एक सप्ताह के अंदर ही संपन्न हो गई थी।

नवंबर 2008 में संपन्न हुई पहली बैठक में चार महत्वपूर्ण लक्ष्यों के साथ एक कार्य–योजना तैयार की गई। बाद के महीनों में चारों में से प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संस्थागत दायित्व तय किए गए जिनमें से कुछ नवोन्मेषी थे। यह प्रमुख लक्ष्य थे – 1) वैश्विक वृद्धि को बनाए रखना; 2) अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था को सुधारना/पुनगर्ठित करना; 3) नए व्यापार संरक्षण उपायों को रोकना तथा व्यापार उदारीकरण की नई व्यवस्था लाना तथा; 4) अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था, विशेषकर आई एम एफ में अपेक्षित सुधार लाना। पहले और सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य अर्थात वैश्विक वृद्धि को बनाए रखने संबंधी आवश्यकता को पूरा करने के लिए जी–20 फ्रेमवर्क की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य सशक्त, टिकाऊ और संतुलित वृद्धि बनाए रखना तथा एक ऐसी नई व्यवस्था को तैयार करना था जिसे परस्पर सहयोग, पारदर्शिता और अभिनव दृष्टिकोण के जरिए महत्वपूर्ण, राजकोषीय, मौद्रिक तथा ढांचागत नीतियां तैयार करने की जिम्मेदारी दी जाए। इसके लिए उप मंत्री, उप गर्वनर स्तर पर फ्रेमवर्क वर्किंग ग्रुप का गठन किया गया। फ्रेमवर्क वर्किंग ग्रुप को नई व्यवस्था को लागू करने, परस्पर मूल्यांकन प्रक्रियाओं को तैयार करने और उन्हें परिचालित करने का दायित्व दिया गया।

वित्तीय क्षेत्र के सुधारों संबंधी लक्ष्य को पूरा करने के लिए जी–20 द्वारा विद्यमान फाइनेंशियल स्टेबिलिटी फोरम को फाइनेंशियल स्टेबिलिटी बोर्ड में बदल दिया गया तथा वित्तीय

मानकों को तय करने के लिए भारत सहित सभी जी–20 देशों की उपस्थिति अनिवार्य कर दी गई। अंतरराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने तथा संरक्षित करने संबंधी तीसरे एजेंडे को पूरा करने का दायित्व विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) को दिया गया जबकि आई एफ आई सुधारों को कार्यान्वित करने का दायित्व आई एम एफ को दिया गया।

जी–20 संबंधी प्रक्रिया के विस्तार में न जाकर मैं उन कुछ बातों पर ही आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा जिन्हें मैं आज की थीम के संदर्भ में महत्वपूर्ण समझता हूँ। पहला, यह कि वैश्विक वित्तीय संकट के प्रत्युत्तर में संस्थागत प्रतिक्रिया नई संस्था/संस्थाओं की स्थापना के बजाय तदर्थ पहलों पर ही केन्द्रित थी। दूसरा संकट के लगभग साढे सात साल बाद (यदि अगस्त 2007 को संकट की शुरूआत को मान लें) तथा जी–20 लीडर्स प्रोसेस के गठन के 6½ साल बाद भी निर्धारित लक्ष्य पूरे नहीं हो सके हैं।

वैश्विक विकास दर अभी भी संकट पूर्व की स्थिति पर नहीं पहुंच सकी है और न ही कोई भी उन्नत अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में लौट सकी है। जैसा कि सबको मालूम है, केवल अमेरिकी अर्थव्यवस्था ही अधिक तेजी से बढ़ रही है और अन्य सभी उन्नत अर्थव्यवस्थाएं सुधार उपायों, विशेषकर निभावी मौद्रिक नीतियों को ही कार्यान्वित करने में लगी हुई हैं। इसके साथ ही यह भी कहना कठिन है कि फ्रेमवर्क वर्किंग ग्रुप द्वारा प्रदर्शित सहकारी नीतिगत प्रयासों का जी–20 सदस्य देशों के आर्थिक विकल्पों पर कोई खास प्रभाव पड़ा है। जबकि इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमुख विकसित अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष चुनौतियां बिल्कुल ही अलग किस्म की हैं और उनकी नीतियां उनकी व्यक्तिगत समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में ही हैं जो जी–20 के न रहने पर भी वैसी ही रहतीं।

आज वैश्विक नीतियों का फोकस कुछ और है। आज नीति निर्माता इस बात पर नजर गड़ाए हुए हैं कि कब अमेरिकी फेडरल रिज़र्व नीतिगत ब्याज दरों को सामान्य स्तर पर लाने संबंधी अनिवार्य प्रक्रिया को अंजाम देगा? यूरोपीय केंद्रीय बैंक द्वारा नए विस्तारी उपाय प्रारंभ कर दिए गए हैं और बैंक ऑफ़ जापान द्वारा विस्तारी उपायों के चलते नई उम्मीदें बंधी हैं। राजकोषीय नीतियों

और संरचनागत सुधारों की दृष्टि से ऐसे कदम उठाए जाने अपेक्षित हैं (बहुत बड़े कदम न भी हों तो) जिनसे हर देश में विकास व प्रगति का एक सकारात्मक माहौल बन सके।

अत: जब तक जी–20 देश समिति की प्रक्रिया के संबंध में गत वर्षों से अब तक प्रदर्शित सहयोग से आगे बढ़कर सच्ची राजनैतिक प्रतिबद्धता और वचनबद्धता नहीं निभाते हैं तब तक इस संकटोत्तर अवधि को युद्धोपरान्त उपजी नयी अभिशासनात्मक व्यवस्था के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। निस्सन्देह जी–20 की बैठकें होती रहेंगी किंतु समूह अपनी प्रारंभिक अवस्था में जिस सक्रियता से कार्य कर रहा था वह सक्रियता और प्रतिबद्धता प्रदर्शित नहीं होगी।

तथापि मैं इसके बारे में बहुत निराशावादी नहीं होना चाहूँगा। गत वर्ष ऊर्जा और पण्य मूल्यों में आई गिरावट से उन्नत अर्थव्यवस्थाओं पर इस वर्ष सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और इस प्रक्रिया के जल्दी उलटने की संभावना कम ही दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो कच्चे तेल की कीमतें 50–60 डॉलर प्रति बैरल की रेंज में तो रह सकती हैं किन्तु 110 से 120 डॉलर प्रति बैरल की रेंज में इनका जाना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसके साथ ही यू एस में सशक्त घरेलू मांग के विस्तार और डॉलर की मजबूती से भी यू एस के व्यवसाय भागीदार देशों में मांग को बढ़ावा मिलेगा। आई एम एफ द्वारा इस वर्ष उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में विकास दर के गत वर्ष के 1.8% से बढ़कर 2.4% होने का अनुमान लगाया गया है। सौभाग्यवश आई एम एफ की प्रबंध निदेशक क्रिस्टीन लेगार्द द्वारा पूर्व में व्यक्त की गई आशंका कि विश्व 'औसत दर्जे' की विकास दर ही हासिल कर सकेगा, सच प्रतीत होती हुई नहीं दिखाई दे रही है।

हालांकि निकट परिदृश्य में कुछ अनिश्चितताएं दिख रही हैं। इनमें फेड दरों में अपरिहार्य बढ़ोत्तरी के प्रभावों सहित यूरो जोन में बढ़ता तनाव, अब तक समाधान के लिए लंबित ग्रीक समस्या और फ्रेंच तथा इटली में सुधार संबंधी प्रयास प्रमुख हैं। साथ ही जापान में अब सरकार द्वारा किए जाने वाले अतिरिक्त सुधारों के परिप्रेक्ष्य में जापान का परिदृश्य भी बहुत स्पष्ट नहीं है। फिर भी 2015 में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि दर में थोड़ा सुधार परिलक्षित होने की संभावना है किंतु न्यून क्षमता उपयोगों के संदर्भ में स्फीतिकारी दबाव इसके लिए चुनौती बने रहेंगे।

जी–20 एजेंडे में तीन और मदें हैं: वित्तीय क्षेत्र के सुधार, व्यापार संवर्द्धन तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं में सुधार। वित्तीय स्थिरता (फाइनेंशियल स्टेबिलिटी बोर्ड) के अंतर्गत वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की दृष्टि से काफी कार्य किया जा चुका है किंतु अभी और भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संकट से पूर्व वित्तीय प्रणाली में पूंजी प्रवाह की कमी थी तथा जोखिम नियंत्रण व्यवस्था भी अपेक्षित स्तर की नहीं थी। समस्याओं के समाधान की प्रणाली अपर्याप्त थी और कई महत्वपूर्ण संस्थाएं प्रभावी विनियमों से बाहर थीं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वित्तीय प्रणाली आज वित्तीय संकट की अवधि की तुलना में अधिक सुरक्षित तथा समुत्थानशील है। किंतु मैं चाहूंगा कि वर्तमान सुधार विगत के संकटों के दुबारा न घटने देने संबंधी प्रयासों के बजाय इस बात पर अधिक केंद्रित हों कि भावी आर्थिक प्रणाली कैसी हो और उसे कैसे तैयार किया जाए। इस संबंध में एक स्पष्ट योजना होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए मनी लांडरिंग को रोकने संबंधी नेक इरादों की परिणिति आर्थिक व्यवस्था पर इसके व्यापक परिणामों का आकलन किए बगैर प्रतिनिधि बैंकिंग के संकुचन के रूप में हो रही है। साथ ही बैंकों के लिए प्रस्तावित नई पूंजी व अन्य प्रभार सीमाएं, बिना किसी स्पष्टता के और उनके प्रभावों का आकलन किए लगातार बढ़ाई जा रही हैं। ट्रैडिशनल बैंकिंग तथा ''शैडो बैंकिंग'' जगत के बीच अंतर इसका एक प्रमुख उदाहरण है। इसके साथ ही सुधार प्रक्रिया को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से लागू करने के मूल इरादे को भी अपेक्षित सफलता नहीं मिली। परिणामस्वरूप कई वित्तीय संस्थानों द्वारा वित्तीय स्थिरता संबंधी चिंताओं के बारे में उनकी अपेक्षित प्रतिक्रिया के बदले अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं की अनदेखी की गई। हालांकि जहाज किनारे पर सुरक्षित रहते हैं पर जहाज किनारे पर खड़ा करने के लिए तो नहीं बनाए जाते हैं अत: सुरक्षा एवं दक्षता तथा वैकल्पिक संस्थागत प्रारूपों के बीच एक समुचित संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता होगी।

वित्तीय क्षेत्र के सुधार से तात्पर्य मात्र विनियमन नहीं है बल्कि इससे कहीं बढ़कर है। मुझे लगता है कि वित्तीय संकट से उबरने में यू एस को एक बात का फायदा मिला और वह था यू एस के वित्तीय बाजारों में बैंक आधारित प्रणाली के बजाय मार्केटेबल सिक्यूरिटीज में व्यापार की अधिकता जिसमें ऋण चूक के संबंध में संकेत काफी जल्दी मिलने से हानियों को समय रहते रोका जा सकता है।

अत: अमेरिकी फर्मों की बैलेंसशीट अनरिकग्नाइज्ड हानियों के बोझ से बची रहीं। इसके साथ ही उधारकर्ताओं को भी निवेशकों से उनकी परिस्थितियों के संबंध में तत्काल संकेत प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि कोई एक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था से श्रेष्ठ है या बेहतर है बल्कि मेरे कहने का अर्थ केवल इतना है कि वित्तीय मूल्यांकनों को यथार्थपरक रखने से आबंटन और दक्षता संबंधी लाभ प्राप्त होते हैं।

व्यापार उदारीकरण को बढ़ावा देने वाले जी–20 के प्रयासों के संबंध में 2014 में भारत और अमेरिका के बीच संपन्न करार ने डब्ल्यूटीओ के ''बाली पैकेज'' को आगे बढ़ाने में मदद की। इस बारे में अभी भी यू एस प्रायोजित ट्रांस पैसिफिक पार्टनरशिप (टीपीपी) तथा ट्रांस एटलांटिक ट्रेड एंड इनवेस्टमेंट पार्टनरशिप (टीटीआईपी) के साथ–साथ चीन प्रायोजित फ्री ट्रेड एरिया ऑफ एशिया पैसिफिक (एफटीएएपी) लंबित हैं और इस क्षेत्र में काफी काम किया जाना बाकी है। पीटरसन इंस्टीट्यूट के गैरी हबर ने इसका उल्लेख करते हुए ठीक ही कहा है कि पिछले 20 वर्षों में – उरूग्वे दौर तथा नाफ्टा जो 1994 में संपन्न हुए थे– कोई भी महत्त्वपूर्ण बहुपक्षीय व्यापार उदारीकरण करार संपन्न नहीं हुआ है। अत: यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि युद्धोपरांत अवधि के विपरीत 2007 में आए वित्तीय संकट के बाद से विश्व की विकास दर जीडीपी वृद्धि दर से आगे नहीं बढ़ी है। साथ ही 2007 में जहां एफ डी आई प्रवाह 2.1 ट्रिलियन यू एस डॉलर था वहीं 2014 में यह 1.3 ट्रिलियन यू एस डॉलर के स्तर पर ही है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन दोनों क्षेत्रों में वृद्धि में गिरावट ने वैश्विक विकास दर को वास्तविक तथा संभाव्य दोनों ही रूपों में संकुचित किया। उम्मीद है कि आगामी वर्ष में व्यापार तथा वित्तीय सुधारों के दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति होगी पर इसे हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।

अंतत: अब मैं अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं में सुधारों के बारे में बात करूंगा विशेषकर सिओल आई एम एफ सुधारों की असफलता के बारे में जिसने वैश्विक अभिशासन पर नि:संदेह काफी प्रतिकूल प्रभाव डाले। इसने विद्यमान बहुपक्षीय संस्थाओं की अभिशासन प्रक्रिया की विश्वसनीयता को हिला दिया। इसने आई एम एफ को संयुक्त राष्ट्र के पारम्परिक द्विपक्षीय सहयोग पर भी प्रश्न चिन्ह खड़े कर दिए। साथ ही अभिशासन सुधारों के लागू न होने से ब्रिक्स बैंक जैसी संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। हालांकि इसकी प्रभावी भूमिका अभी भी संदिग्ध है।

निष्कर्षत: सिओल आई एम एफ सुधारों को अमेरिकी काँग्रेस का जितना जल्दी अनुमोदन मिल जाता है, वैश्विक अभिशासन व्यवस्था के लिए यह उतना ही श्रेयस्कर होगा। किंतु कम से कम अभी जी–20 लीडर्स समिट प्रोसेस को वैश्विक आर्थिक और वित्तीय संबंधों की दृष्टि से एक नई व्यवस्था के रूप में देखना सही प्रतीत नहीं होता है।

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के बारे में निवेशकों का दृष्टिकोण

अब मैं अपने तीसरे विषय पर आता हूँ जो उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के बारे में निवेशकों के दृष्टिकोण के बारे में है। यहाँ बैठे श्रोताओं को यह बताने की जरूरत नहीं है कि अधिकांश मामलों में उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि दर या तो सपाट है या धीमी हो रही है। इसे वित्तीय संकट के उपरान्त पण्यों तथा ऊर्जा मूल्यों में वृद्धि से भी झटका लगा। हालांकि शुरूआती यूफोरिया (सुखानुभूति) जी–20 देशों द्वारा 2008 के बाद लागू की गई विस्तारक नीतियों तथा विशेषकर प्रोत्साहनकारी उपायों से संचालित चीनी बाजार में मांग वृद्धि के चलते रहा। तथापि मई 2012 में बाजारों में हुए कथित ''टैपर टैंट्रम'' ने निवेशकों को इस वास्तविकता को समझने में मदद की कि हर प्रमुख उभरती अर्थव्यवस्था अपनी अलग तरह की संरचनागत चुनौतियों से जूझ रही है।

निवेशकों को यह आभास हो गया है कि यह चुनौतियां यद्यपि भिन्न–भिन्न प्रकृति की हैं तथा वृद्धि एवं विकास आयोग द्वारा निर्देशित सशक्त और टिकाऊ वृद्धि के रास्ते में रोड़ा/बाधा हैं। इस बारे में एक सामान्य निष्कर्ष यह भी है कि ब्रिक्स और मिस्ट जैसे समूहों पर निवेशकों की निर्भरता उचित नहीं है क्योंकि इनकी बुनियादी चुनौतियां अलग–अलग हैं। अमेरिकी लेखक कुर्त वॉनेगट ने इन समूहों को 'ग्रैनफालून' कहकर परिभाषित किया है जिसका अर्थ है – ''साझा किंतु अंतत: नकली आधार पर बना संगठन''। अत: अब निवेशकों ने नए और कम फ्लैटरिंग संगठनों जैसे ''फ्रेजाइल फाइव'' की ओर रूख करना शुरू कर दिया। हालांकि इसके साथ बाजार की कमजोरी और मुद्राओं में गिरावट भी एक प्रमुख समस्या के रूप में जुड़ी रही।

एक बार फिर मैं बहुत निराशावादी नहीं होना चाहूंगा क्योंकि कई बड़ी उभरती अर्थव्यवस्थाओं में समुचित वृद्धि के लिए पर्याप्त और टिकाऊ अवसरों को सृजित करने की क्षमता है। इनमें अनुकूल जन–सांख्यिकी निम्न उत्पादकता (तुलनात्मक रूप से सुधारों को लागू करने में सहायक); संस्थागत कमजोरियां तथा अविकसित वित्तीय प्रणाली (सुधार तात्कालिक आधार पर लागू किए जा सकते हैं) शामिल हैं। मैं यह मजाक में नहीं कह रहा हूँ किन्तु वास्तविक चुनौतियाँ अनुकूलन और कार्यान्वयन की हैं। हालांकि इनसे निपटना थोड़ा कठिन है किंतु संभव और व्यावहारिक है।

अभी के लिए हालांकि यह स्पष्ट है कि निवेशक निकट भविष्य में भारत के ब्रिक्स सहयोगियों तथा टर्की जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं के बारे में (उनकी तात्कालिक चुनौतियों से निपटने की क्षमता) अनिश्चित राय ही रखते हैं। भले ही दीर्घावधि में इस दृष्टिकोण में कोई बदलाव आ जाए। इसी प्रकार अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाएं जैसे – वेनेज्युएला और अर्जेंटिना वर्तमान में राजनैतिक अनिश्चितता से ग्रस्त हैं और निकट भविष्य में भी इस संबंध में कोई स्पष्ट तस्वीर उभरती नहीं दिखाई दे रही है।

भारत के लिए निहितार्थ

अंतत: अब मैं अपने आखिरी विषय पर आता हूँ। अर्थात वर्तमान घटनाओं का भारत के लिए निहितार्थ क्या है? सबसे पहले तो मैं स्पष्ट कर दूं कि इस बारे में मैं आप लोगों को बहुत कुछ बताने का इरादा नहीं रखता हूँ क्योंकि आप इस संबंध में मुझसे बेहतर जानते हैं फिर भी मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा। यद्यपि बाहरी वातावरण मिला जुला है किंतु समग्र रूप में कहें तो अनुकूल है और इसका उल्लेख मैंने अपनी प्रारंभिक टिप्पणियों में भी किया था। वैश्विक वृद्धि के बढ़ने के आसार हैं और ऊर्जा तथा पण्य मूल्यों में कमी ने इसे बल प्रदान किया है। इस वृद्धि के निकट भविष्य में भी जारी रहने की आशा है।

मैं आप लोगों के समक्ष इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं समझता हूँ। क्योंकि आपने बजट में बचतों के स्वरूप और तदनुसार ब्याज दरों में कटौती संबंधी संकेतों को समझ लिया होगा। फिर भी भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती है अपनी उत्पादकता बढ़ाना और इसे बनाए रखना। हालांकि इसके लिए कोई तैयार समाधान नहीं है किन्तु हालिया बजट में किए गए प्रावधान जैसे सार्वजनिक निवेश में बढ़ोत्तरी, कर सुधार, कारोबारी माहौल में सुधार सहित दिवालिया नियमों में सुधार, सब्सिडी में कमी तथा व्यापक विकेन्द्रीकरण सहित अधिक जवाब देह और निर्णय लेने वाली सरकार इसका स्वयं संकेत देते हैं।

इसके साथ ही भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा वित्तीय क्षेत्र के सुधार और विकास के लिए प्रस्तावित सुधार भी सही दिशा में हैं और काफी सकारात्मक हैं। हालिया वित्तीय संकट के दौरान हमने देखा है कि सही दिशा में कार्य कर रही वित्तीय प्रणाली वृद्धि तथा स्थायित्व के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण होती है। यह सभी कारक निवेशकों के लिए काफी रचनात्मक और आशावादिता से भरे हैं। असली चुनौती यह निर्धारित करना नहीं है कि क्या किया जाए बल्कि असली चुनौती परिवर्तन और उसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जनमत जुटाने की है और हमेशा से सुधार का सबसे कठिन पक्ष यही रहा है।

अंततः मेरा संदेश बहुत ही साधारण है भारत के लिए परिस्थितियां आज बिल्कुल आदर्श नहीं है किंतु काफी हद तक अनुकूल हैं। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में न्यून मुद्रास्फीति और निम्नब्याज दरों की स्थिति और उनकी वृद्धि का सकारात्मक परिदृश्य हालांकि बहुत समय तक नहीं बना रहेगा किन्तु इसके बहुत जल्दी समाप्त होने की भी संभावना दिखाई नहीं देती है। न्यून ऊर्जा और पण्य मूल्यों से कुछ समय तक माहौल सकारात्मक बना रहेगा। प्रत्याशित सुधारों के प्रति सरकार की वचन बद्धता और अन्य उभरते बाज़ारों में समस्याओं के चलते भारत के प्रति निवेशकों का रुख सकारात्मक बना रहेगा। मुझे पता है कि मैंने कई चुनौतियों, विशेषकर भू–राजनैतिक चुनौतियों का जिक्र नहीं किया है क्योंकि इस समय इस देश की शक्तियों और वृद्धि के लिए अवसरों से हर कोई परिचित है। मुझे आशा है कि अगली बार जब मैं दिल्ली से राजस्थान की ओर जाऊंगा तो मुझे न केवल टॉवरों की नई श्रृखंला देखने को मिलेगी बल्कि इन्फ्रास्ट्रक्चर में भी सुधार होगा। मुझे विश्वास

है कि यदि भारत इस सशक्त वृद्धि को बनाए रखने तथा सामाजिक सहायता कार्यक्रमों के लिए सब्सिडी भुगतान प्रणाली को और बेहतर तथा प्रभावी बनाने में सफल रहा तो निश्चित ही गरीबी में कमी सहित अन्य सामाजिक मानदंडों में भी सुधार होगा। हालांकि मैं नीमराना हाइवे की बेशोर फ्रीवे से तुलना नहीं करना चाहूंगा किंतु मुझे विश्वास है कि सुधारों तथा वृद्धि की मेरे द्वारा की गई कल्पना मुझे निराश नहीं करेगी। मैं इस सुंदर और विविधता से भरे देश में कई भावी उपलब्धियों के प्रति काफी आशान्वित हूँ और मुझे विश्वास है कि मेरी यह आशावादिता मुझे सही सिद्ध करेगी।

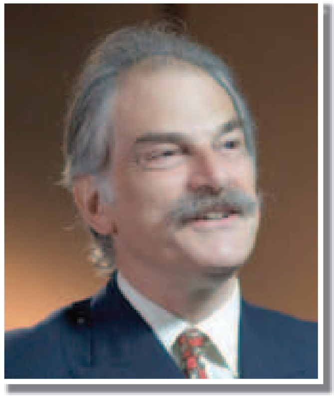

डॉ. लिप्स्की जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के वाशिंगटन डी सी स्थित पॉल एच निट्ज़ स्कूल ऑफ एडवांस्ड इंटरनेशनल स्टडीज़ में वरिष्ठ फ़ेलो हैं। इससे पूर्व डॉ. लिप्स्की अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष में सितंबर 2006 से अगस्त 2011 तक प्रथम उप प्रबंध निदेशक और तथा मई से जुलाई 2011 तक कार्यकारी प्रबंध निदेशक रह चुके हैं। नवंबर 2011 में काँस में आयोजित जी-20 समिट के दौरान आई एम एफ के प्रबंध निदेशक के विशेष सलाहकार के रूप में भी कार्य कर चुके हैं। डॉ. लिप्स्की वर्तमान में ऐस्पेन इंस्टीट्यूट के वैश्विक अर्थव्यवस्था पर कार्यक्रम के सह-अध्यक्ष तथा एच एस बी सी होल्डिंग्स के गैर कार्यकारी निदेशक हैं। आप नेशनल ब्यूरो ऑफ इकोनोमिक रिसर्च तथा सेंटर फॉर ग्लोबल डेवलपमेंट के निदेशक के तौर पर भी कार्य कर रहे हैं। आप स्टैनफोर्ड इंस्टीट्यूट फॉर

इकोनोमिक पॉलिसी रिसर्च के सलाहकार मण्डल व विदेशी संबंध परिषद के भी सदस्य हैं।

2006 में आई एम एफ में आने से पूर्व डॉ. लिप्स्की जे पी मोर्गन इनवेस्टमेंट बैंक के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे। इससे पूर्व वे जे पी मोर्गन में मुख्य अर्थशास्त्री तथा चेज़ मैन्हट्टन बैंक में मुख्य अर्थशास्त्री व शोध निदेशक के रूप में कार्य कर चुके हैं। वे 1992 से 1997 के दौरान सोलोमन ब्रदर्स इंक में भी मुख्य अर्थशास्त्री रह चुके हैं। 1989 से 1992 के दौरान डॉ. लिप्स्की लंदन में सोलोमन ब्रदर्स इंक के 'यूरोपीय अर्थव्यवस्था एवं बाजार विश्लेषण' समूह का भी नेतृत्व कर चुके हैं। 1984 में सोलोमन ब्रदर्स समूह ज्वाइन करने से पहले वे 10 वर्ष तक आई एम एफ में थे जहां उन्होने फंड (कोष) की विनिमय दर प्रक्रिया की निगरानी व प्रबंध सहित अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार की विकास संभावनाओं का विश्लेषण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस दौरान उन्होने कई सदस्य देशों के साथ व्यापार वार्ताओं में सहभागिता की और 1978 से 1980 के दौरान चिले में आई एम एफ के निवासी प्रतिनिधि भी रहे। डॉ. लिप्स्की स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से पी एच डी हैं।

अब तक प्रकाशित किए गए वार्षिक व्याख्यानों की सूची

क्र.	दिनांक	वक्ता	अध्यक्षता	विषय
1)	03.03.1986	डॉ. दीपक नय्यर प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स, जेएनयू, नई दिल्ली	डॉ. सी. रंगराजन उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	सेवाओं का अंतरराष्ट्रीय व्यापार – विकासशील देशों के लिए निहितार्थ
2)	17.03.1987	डॉ. पार्थ दासगुप्त प्रो. ऑफ इकोनॉमिक्स, यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज, यू.के.	डॉ. सी. रंगराजन उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	अर्थव्यवस्थाओं का संसाधन आधार
3)	04.02.1988	डॉ. आबिद हुसैन सदस्य योजना आयोग	डॉ. वी.जी. राजाध्यक्ष योजना आयोग के पूर्व सदस्य	भारतीय आयोजना में विदेश व्यापार नीति
4)	02.03.1989	श्री एम. नरसिंहम उपाध्यक्ष एडमिनिसट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया, हैदराबाद	श्री डी.एन. घोष अध्यक्ष भारतीय स्टेट बैंक	वित्तीय बाज़ारों का भूमंडलीकरण और भारत
5)	05.03.1990	श्री सिडनी डेल वरिष्ठ अध्येता, यूनाइटेड नेशन्स इंस्टीट्यूट फॉर ट्रेनिंग एंड रिसर्च	श्री आर.एन. मल्होत्रा गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	1990 के दशक के कार्यों के लिए विश्व बैंक में सुधार करना
6)	15.03.1991	प्रो. प्रणव वर्धन प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया, बर्कले	डॉ. किरीट पारिख निदेशक आई जी आई डी आर	सरकार और गतिशील तुलनात्मक लाभ
7)	05.03.1992	डॉ. (सुश्री) इशर जज अहलूवालिया रिसर्च प्रोफेसर सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नई दिल्ली	डॉ. वी. कृष्णमूर्ति सदस्य योजना आयोग	भारत की व्यापार नीति और औद्योगीकरण
8)	04.01.1993	लॉर्ड मेघनाद देसाई प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंस, यू.के.	डॉ. एस. एस. तारापोर उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	पूँजीवाद, समाजवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था

क्र.	दिनांक	वक्ता	अध्यक्षता	विषय
9)	21.03.1994	डॉ. विजय जोशी अध्येता मेर्टन कॉलेज, ऑक्सफोर्ड	प्रो. कौशिक बसु दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स	समष्टिगत आर्थिक नीति और भारत में आर्थिक सुधार
10)	27.03.1995	डॉ. स्टेनले फिशर प्रथम उप प्रबंध निदेशक आई एम एफ, यू एस ए	डॉ. सी. रंगराजन गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	आर्थिक गरीब और सुधार
11)	06.03.1996	श्री रजत गुप्ता प्रबंध निदेशक मैककिन्जी एंड कं. आईएनसी, यू एस ए	डॉ. फ्रेडी ए. मेहता अध्यक्ष फोर्ब्स ग्रुप	उत्पादकता के नए शिखर
12)	04.03.1997	डॉ. पेड्रो आस्पे पूर्व वित्त मंत्री, मैक्सिको भारतीय रिज़र्व बैंक	डॉ. वाई.वी. रेड्डी उप गवर्नर,	निजीकरण और भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ – मेक्सिको के अनुभव
13)	30.03.1998	श्री चार्ल्स एच. डाल्लारा प्रबंध निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल फायनेंस, वाशिंग्टन डी.सी.	श्री एस.एस. तारापोर पूर्व उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	एशियाई मुद्रा संकट के बाद उभरते हुए बाज़ारों और भारत का परिदृश्य
14)	10.03.1999	डॉ. सी. फ्रेड बर्गस्टन निदेशक, इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स, वाशिंग्टन डी.सी.	श्री ए.वी. गणेशन पूर्व वाणिज्य सचिव, भारत सरकार	भारत और वैश्विक व्यापार प्रणाली
15)	29.03.2000	डॉ. इसुके सकाकीबारा प्रोफेसर केइयो यूनिवर्सिटी, जापान	डॉ. बिमल जलान गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	21वीं शताब्दी में एशिया – भारत और जापान की भूमिका
16)	22.03.2001	प्रोफेसर निकोलस स्टर्न मुख्य अर्थशास्त्री एवं उपाध्यक्ष, विश्व बैंक, वाशिंग्टन डी.सी.	डॉ. शंकर आचार्य मुख्य आर्थिक सलाहकार, वित्त मंत्रालय,	भारत में निवेश, विकास तथा गरीबी में कमी के लिए वातावरण बनाना भारत सरकार

क्र.	दिनांक	वक्ता	अध्यक्षता	विषय
17)	22.04.2002	डॉ. पर पिंस्ट्रुप-एंडरसन महानिदेशक इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाशिंग्टन डी.सी.	डॉ. एम.एस. गिल पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त, भारत सरकार	वैश्वीकरण में भारतीय कृषि
18)	05.08.2003	जेम्स बी. बोल्जर, ओ एन ज़ेड पूर्व प्रधान मंत्री, न्यूज़ीलैंड अध्यक्ष, वर्ल्ड एग्रीकल्चरल फोरम	श्री जगदीश कपूर अध्यक्ष कृषि वित्त निगम	कृषि में अंतरराष्ट्रीय व्यापार: उभरते परिदृश्य
19)	10.03.2004	डॉ. एडुआर्डो अनिनात पूर्व उप प्रबंध निदेशक इंटरनेशनल मॉनीटरी फंड एवं पूर्व वित्त मंत्री, चिले	डॉ. विजय केलकर सलाहकार, केन्द्रीय वित्त मंत्रालय	विकासशील देशों के परिदृश्य में व्यापार और वित्तीय क्षेत्र में भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ
20)	10.03.2005	श्री रूबिंस रिकोपेरो पूर्व महासचिव, अंकटाड	श्री तरूण दास चीफ मेंटॅर, सी आई आई	व्यापार और विकास: विकासशील देशों के लिए चुनौतियाँ
21)	02.05.2006	सर सुमा चक्रबर्ती स्थायी सचिव डिपार्टमेंट ऑफ़ इंटरनेशनल डेवेलपमेंट, यू. के.	श्रीमती श्यामला गोपीनाथ उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	व्यापार और विकास में राष्ट्र की भूमिका
22)	20.04.2007	डॉ. डेविड ह्यूम प्रो. ऑफ़ डेवेलपमेंट स्टडीज, आई डी पी एम, यूनिवर्सिटी ऑफ़ मैनचेस्टर, यू. के.	डॉ. राकेश मोहन उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	समावेशी वैश्वीकरण: चिरकालिक गरीबी को दूर करना
23)	18.03.2008	श्री केमल दर्विश प्रशासक यूनाइटेड नेशन्स डेवेलपमेंट प्रोग्राम (यू एन डी पी)	डॉ. अरविन्द विरमानी मुख्य आर्थिक सलाहकार आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार	विश्व अर्थव्यवस्था की नई संरचना का परिदृश्य

क्र.	दिनांक	वक्ता	अध्यक्षता	विषय
24)	13.03.2009	श्री जस्टीन यिफु लिन मुख्य अर्थशास्त्री एवं वरिष्ठ उपाध्यक्ष, विश्व बैंक	डॉ. दिलीप एम. नाचणे निदेशक इंदिरा गाँधी इंस्टीट्यूट ऑफ़ डेवेलपमेंट रिसर्च, मुम्बई	कींस के अर्थशास्त्र से परे–विकास के प्रोत्साहन
25)	18.03.2010	डॉ. सुपाचई पैनिचपाकड़ी अंकटाड के महासचिव	डॉ. सुबीर गोकर्ण उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	आर्थिक अभिशासन का पुनर्निर्माण: संपोषी वृद्धि तथा विकास का एजेंडा
26)	27.07.2011	प्रो. यु यांगडिंग अध्यक्ष, चाइना सोसायटी ऑफ़ वर्ल्ड इकोनॉमिस्ट	डॉ. वाई.वी. रेड्डी उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक	चीन की अर्थव्यवस्था का पुनर्संतुलन
27)	21.11.2012	प्रो. जगदीश भगवती प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स, लॉ एंड इंटरनेशनल अफेयर्स कोलंबिया यूनिवर्सिटी	डॉ. सुबीर गोकर्ण उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	विश्व व्यापार प्रणाली में परिवर्तन: भारत के विकल्प
28)	14.03.2013	प्रो. प्रणब बर्धन प्रोफेसर ऑफ़ इकोनॉमिक्स यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलीफोर्निया, बर्कले	डॉ. उर्जित आर. पटेल उप गवर्नर भारतीय रिज़र्व बैंक	व्यापार और विकास का सिद्धांत : भारतीय परिप्रेक्ष्य
29)	14.02.2014	प्रो. किशोर महबुबानी डीन, ली क्युऑन यू स्कूल ऑफ़ पब्लिक पॉलिसी नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिंगापुर	डॉ. दिलीप एम. नाचणे सदस्य, प्रधानमंत्री आर्थिक सलाहकार परिषद	बदलते वैश्विक समीकरण: क्या भारत इनका लाभ उठा पाएगा?
30)	23.03.2015	डॉ. जॉन लिप्स्की वरिष्ठ फ़ेलो, पॉल एच. निट्ज़ स्कूल ऑफ़ एडवांस्ड इंटरनेशनल स्टडीज़ जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, वाशिंग्टन डी.सी.	डॉ. हसमुख अढिया सचिव, वित्तीय सेवा विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार	अंतरराष्ट्रीय अभिशासन का विकास, उभरते बाजार और भारत की आर्थिक संभाव्यता

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

दूरभाष: + 91 22 2217 2600 • फैक्स: + 91 22 2218 2572
वेबसाइटः www.eximbankindia.in • ईमेल: ccg@eximbankindia.in